अथवा

'नई कविता का आत्म संघर्ष' में निहित मुक्तिबोध के विचारों को स्पष्ट कीजिए।

4. 'संदर्भ की खोज' पाठ का प्रतिपादय लिखिए। (15)

अथवा

आलोचना के क्षेत्र में नेमीचंद्र जैन के विशिष्ट योगदान को रेखांकित कीजिए।

RAMANUJAN COLLEGE LIBRARY
Kalkaji, New Delhi-110019

[This question paper contains 8 printed pages.]

Your Roll No.....

Sr. No. of Question Paper : 801 **J**

Unique Paper Code : 12051601

Name of the Paper : हिंदी आलोचना

Name of the Course : **BA (H) Hindi – CBCS**

Semester : VI

Duration : 3 Hours Maximum Marks : 75

छात्रों के लिए निर्देश

1. इस प्रश्न-पत्र के मिलते ही ऊपर दिए गए निर्धारित स्थान पर अपना अनुक्रमांक लिखिए ।
2. **सभी** प्रश्न अनिवार्य हैं ।

1. निम्नलिखित गदयांशों के संदर्भ को स्पष्ट करते हुए व्याख्या लिखिए : (10 + 10 + 10)

(क) लोक में फैली दुख की छाया को हटाने में ब्रह्म की आनंदकला जो शक्तिमय रूप धारण करती है, उसकी भीषणता में भी अद्भुत मनोहरता, कठुता में भी अपूर्व मधुरता, प्रचंडता में भी गहरी

आद्रता साथ लगी रहती है। विरुद्धों का यही सामंजस्य कर्म क्षेत्र का सौंदर्य है, जिसकी ओर आकर्षित हुए बिना मनुष्य का हृदय नहीं रह सकता। इस सामंजस्य का और कई रूपों में भी दर्शन होता है। किसी कोट-पतलून-हैट वाले को धारा प्रवाह संस्कृत बोलते अथवा किसी पंडित वेषधारी सज्जन को अंग्रेजी की प्रगल्भ वक्तृता देते सुन व्यक्तित्व का जो एक चमत्कार सा दिखाई पड़ता है, उसकी तह में भी सामंजस्य का यही सौंदर्य समझना चाहिए। भीषणता और सरसता, कोमलता और कठोरता, कटुता और मधुरता, प्रचंडता और मृदुता का सामंजस्य ही लोक धर्म का सौंदर्य है। आदि कवि वाल्मीकि की वाणी इसी सौंदर्य के उद्घाटन-महोत्सव का संगीत है। सौंदर्य का यह उद्घाटन असौंदर्य का आवरण हटाकर होता है। धर्म और मंगल की वह ज्योति अधर्म और अमंगल की घटा को फाड़ती हुई फूटती है। इसमें कवि हमारे सामने असौंदर्य, अमंगल, अत्याचार, क्लेश इत्यादि भी रखता है; रोष, हाहाकार और ध्वंस का दृश्य भी लाता है। पर सारे भाव, सारे रूप और सारे व्यापार भीतर-भीतर आनंदकाल के विकास में योग देते ही पाए जाते हैं।

अथवा

है। आगे चलकर समरूप अनुभवों से मिल्ते हुए वह मनोमय तत्व जब जीवन मूल्य और जीवन दृष्टि से अपना संगम करता है तब वह और भी सामान्य हो उठता है। प्रश्न यह है कि वे जीवन मूल्य और जीवन-दृष्टियां किसकी हैं? वह सामान्य भूमि किसकी है? यह प्रश्न स्वाभाविक है। यह प्रश्न हमें समाजशास्त्रीय आलोचना की ओर ले जाता है। आगे चलकर जबकि कवि अपने मनोमय तत्व रूप को बाहय अभिव्यक्ति के सांचे में ढालने लगता है या जब एक बाह्य अभिव्यक्ति को अंतर अभिव्यक्ति के साइज की, काट की, रंग की बनाने लगता है, तब उसकी आंखों के सामने जो सौंदर्य प्रतिमान होता है वह सौंदर्य प्रतिमान किस सौंदर्यभिरुचि ने, किस वर्ग की सौंदर्यभिरुचि ने उत्पन्न किया है, यह प्रश्न स्वाभाविक हो उठता है।

2. भारतेंदु युगीन हिन्दी आलोचना के महत्व पर विचार कीजिए। (15)

अथवा

द्विवेदी युगीन हिन्दी आलोचना की प्रमुख विशेषताओं की चर्चा कीजिए।

3. 'छायावाद और यथार्थवाद' निबंध के आधार पर जयशंकर प्रसाद की आलोचना दृष्टि की समीक्षा कीजिए। (15)

P.T.O.

नहीं बदले, प्रेम अब भी प्रेम है, घृणा अभी घृणा, यह साधारणतया स्वीकार किया जा सकता है। पर यह भी ध्यान में रखना होगा कि राग वही रहने पर भी रागात्मक संबंधों की प्रणालियां बदल गई है; और कवि का क्षेत्र रागात्मक संबंधों का क्षेत्र होने के कारण इस परिवर्तन का कवि कर्म पर गहरा असर पड़ा है। निरे तथ्य और सत्य में या कह लीजिए वस्तु-सत्य और व्यक्ति-सत्य में यह भेद है कि सत्य वह तथ्य है जिसके साथ हमारा रागात्मक संबंध है; बिना इस संबंध के वह एक बाहय वास्तविकता है जो तद्धित काव्य में स्थान नहीं पा सकती। लेकिन जैसे-जैसे बाह्य वास्तविकता बदलती है वैसे-वैसे हमारे उससे रगात्मक संबंध जोड़ने की प्रणालियों भी बदलती हैं और अगर नहीं बदलती तो उसे बाहय वास्तविकता से हमारा संबंध टूट जाता है।

अथवा

अभिव्यक्ति प्राप्त होने पर भाव पक्ष का समाजीकरण हो जाता है। सृजन प्रक्रिया के अंतर्गत विशिष्ट को सामान्य बनाने की यह क्रिया तभी से शुरू हो जाती है जब कवि कला के प्रथम चरण में अंतर-नेत्रों से उस तत्व को देखने लगता है कि जो तत्व उन अंतर नेत्रों के सामने तरंगायित और उद्घाटित हो उठता

अब साहित्य ने यह काम अपने जिम्मे में ले लिया है और उसका साधन सौंदर्य-प्रेम है। यह मनुष्य में इसी सौंदर्य-प्रेम को जगाने का यत्न करता है। ऐसा कोई मनुष्य नहीं जिसमें सौंदर्य की अनुभूति ना हो। साहित्यकार में यह वृति जितनी ही जागृत और सक्रिय होती है उसकी रचना उतनी ही प्रभावकारी होती है। प्रकृति निरीक्षण और अपनी अनुभूति की तीक्ष्णता की बदौलत उसके सोंदर्य बोध में इतनी तीव्रता आ जाती है कि जो कुछ असुंदर है, अभद्र है, मनुष्यता से रहित है, यह उसके लिए असहय हो जाता है। उस पर वह शब्दों और भावों की सारी शक्ति से वार करता है। अथवा यह कहिए कि वह मानवता दिव्यता और भद्गता का साफा बांधे होता है। जो दलित है, पीड़ित है, वंचित है - चाहे वह व्यक्ति हो या समूह, इसकी हिमायत और वकालत करना उसका फर्ज है। उसकी अदालत समाज है। इस अदालत के सामने वह अपना इस्तगासा पेश करता है और उसकी न्यायवृति तथा सौंदर्यवृति को जागृत करके अपना यत्न सफल समझता है।

(ख) इस मानवतावाद के दो प्रधान लक्षण है - (1) मनुष्य की महिमा और मानवीय मूल्यों में विश्वास और (2) मनुष्य की मर्त्य जीवन को किसी प्रकार के पाप फल भोगने के परिणाम न समझ इसे इसी दुनिया में दुख-शोक से बचाना और इसी दुनिया में सुख समृद्धि से युकत करना। यह दूसरी बात उन सब पुरानी वैरागी मनोभावनाओं का प्रत्याखान करती है जो शरीर को नाना क्रिछाचारों से तापित करके किसी अनंत शाश्वत सुख की ओर मनुष्य को प्रवृत करती है और इस जीवन का संपूर्ण रूप से उपभोग करने की प्रवृत्ति को प्रश्रय देती है। परंतु पहली भावना इस पर अंकुश का काम करती है; क्योंकि वह मनुष्य के द्वारा उद्भावित पशु समान धरातल से उपरले स्तर के मानसिक संयम, बौद्धिक ईमानदारी और मनुष्य रूप को विकसित करने वाले समस्त नैतिक आदर्शों को बहुत अधिक मूल्य देती है। इस प्रकार यह तो माना जाता है कि मनुष्य को यह मर्त्य जीवन ही चरम और परम है, परंतु साथ ही यह भी माना जाता है कि मनुष्य की मनुष्यता असीम संभावनाओं से भरी है। वह सब प्रकार के नैतिक और आध्यात्मिक विकास का साधन है, उसकी महिमा अपार है।

अथवा

तुलसी की मानवीय सहानुभूति का आधार सामाजिक यथार्थ है। तत्कालीन समाज का जैसा भरा पूरा चित्र उनकी रचनाओं में मिलता है वैसा उस समय के और किसी कवि की रचनाओं में नहीं मिलता। जनता की दरिद्रता उनके क्लेशों का वर्णन उन्होंने बड़े ही यथार्थवादी ढंग से किया है, "खेती ना किसान को, भिखारी को न भीख, बलि बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।" बड़ी ही स्पष्टता से उन्होंने समाज में सामंतों के कुशासन का सवाल उठाया है। राजा और प्रजा के संघर्ष में तुलसी प्रजा के साथ हैं रामचरितमानस में वह प्रजा को सताने वाले राजाओं के लिए कहते हैं- "जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी द्य ते नूप अवसि नरक अधिकारी ।।"

(ग) तार सप्तक के कवियों पर यह आक्षेप किया गया कि वे साधारणीकरण सिद्धांत नहीं मानते। यह दोहरा अन्याय है। क्योंकि वे न केवल इस सिद्धांत को मानते हैं बल्कि इसी के प्रयोग की आवश्यकता भी सिद्ध करते हैं। यह मानना होगा की सभ्यता के विकास के साथ-साथ हमारी अनुभूतियों का क्षेत्र भी विकसित होता गया है। यह कहा जा सकता है कि हमारे मूल राग-विराग